तित्थयर

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : अगस्त १९९० : चतुर्थ अंक

6403

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १४ : अंक ४

अगस्त १९९०

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

राजगृह-शिल्प में अष्ट मातृकाएँ ९९

जैन कथा-साहित्य १०४

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ११४

संकलन १२५

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १२७

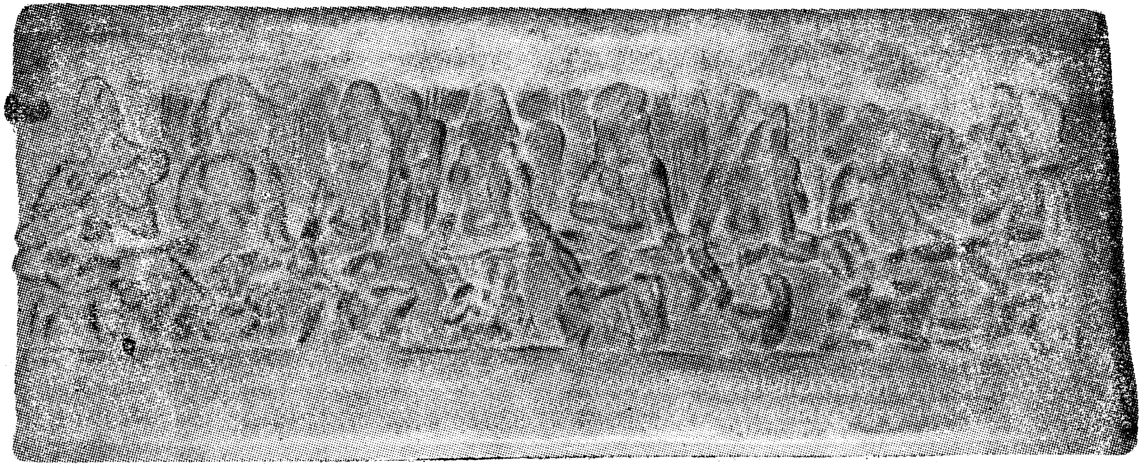

जैन अष्ट मातृकाएँ, राजगीर

राजगृह शिल्प में अष्ट मातृकाएँ

डा० महेन्द्र कुमार जैन "मनुज"

जैन-शिल्पशास्त्रों में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार दिशाओं और चार विदिशाओं की, आठ देवियों का वर्णन मिलता है, जिनकी अष्टमातृकाओं के नाम से प्रख्याति है। इनके नाम—इन्द्राणी, वैष्णवी, कौमारी, बाराही, ब्रह्माणी, महालक्ष्मी, चामुंडी और भवानी हैं। इनमें से आदि की चार, चार दिशाओं की और शेष चार, विदिशाओं की देवियाँ हैं।

राजगृह (बिहार) में प्रचुर मात्रा में और प्राचीनतम जैन-शिल्प प्राप्त हुए हैं। यहाँ के विपुलाचल पर्वत से शक सम्वत् १५७२ का एक शिल्पित शिलाफलक प्राप्त हुआ है, जिसमें अष्टमातृकाओं का अंकन बड़ी कुशलता एवं सूक्ष्मता से किया गया है। यह शिलाफलक २४ इंच ८ से॰मी॰ चौड़ा और ६ इंच ८ से॰ मी॰ ऊँचा है। वर्तमान में यह दिगम्बर जैन लाल मंदिर, राजगीर के संग्रहालय में प्रदर्शित है।

भवानी/माहेश्वरी—वृषभवाहना (पूर्वोत्तर कोण) :

यह पूर्वोत्तर कोण की देवी है। शिलाफलक पर दर्शक (दर्शनार्थी) के बाएँ और अन्य देवियों के सबसे दाहिने किनारे पर यह देवी अंकित है। यह वृषभ (बैल) पर सुख-मुद्रा में आसीन है। मुखमंडल बहुत खंडित होने के कारण त्रिनेत्र और मस्तक पर चन्द्रमा नहीं दिखता है जो कि (प्रतिष्ठातिलक, पृष्ठ ३६६ के अनुसार) इस देवी के होना चाहिये। कानों में कर्णाभरण, केशसज्जा और कानों के नीचे से स्कन्धों पर आगे की ओर दो-दो लटें लटकती हुई स्पष्ट अंकित हैं। इस देवी के गले में मोतियों का गलहार जिसमें बीच में रत्न जड़ित टिकुली का अंकन है। ऐसा ही गलहार राक्षस वाहनी चामुंडा के अतिरिक्त सभी देवियों के गले में उत्कीर्णित है। इसकीं दो भुजाएँ हैं, दोनों में सरस्वती के समान वीणा सँभाले हुए है। भुजाओं में बाजूबन्द कलात्मक है, धोती कमर से पैरों तक पहने हुए और पैरों में एक-एक पैजणियाँ शिल्पित है। मेखला तीन लड़ी की पहने हुए दिखायी गयी है; किन्तु शेषनाग की मेखला नहीं है जो कि माहेश्वरी के होना चाहिए। बाएँ स्कन्ध पर से दो सूत्र का एक यज्ञोपवीत-सा लटकता हुआ बाएँ स्तन पर से बाईं जंघा पर और वहाँ से दाहिनी जंघा

पर होते हुए दाहिने कूल्हे पर छिप गया अंकित है। ऐसा ही चामुंडा के अतिरिक्त सभी मातृकाओं के लिये उत्कीर्णित है, यह देवी वृषभ पर आसीन है। बायाँ पैर मुड़ा हुआ है और दायां वृषभ पर लटका हुआ है। बैल बैठा हुआ उत्कीर्णित है।

ब्रह्माणी—हंसवाहना (पूर्व-दक्षिण कोण):

यह पूर्व-दक्षिण कोण की देवी है। शिलाफलक पर दर्शक के बाएँ से द्वितीय और भवानी के बायीं तरफ शिल्पित है। यह देवी एक पक्षी पर आरूढ़ है जो सम्भवतः हंस है। अन्य देवियों की तरह सभी अलंकरणों का अंकन है। दोनों स्कन्धों पर आगे की ओर एक-एक लट भी लटक रही है। यह चतुराननना देवी है, पीछे का मुँह शिला में विलीन है। सामने और बायीं ओर का मुँह खंडित है, दाहिनी तरफ का मुँह स्पष्ट है। मुँह की केश-शिखाएँ ऊपर को उड़ती रही हैं जो कुछ रुद्र हो गयीं हैं। इस देवी की भुजाएँ दो ही हैं। बायीं भुजा बाएँ घुटने पर रखी हैं जो खंडित हैं और दाहिनी वक्ष की ओर गयी है। यह भी खंडित है जिससे ज्ञात नहीं हो पाता कि हाथ में क्या लिये हुए है।

महालक्ष्मी/त्रिपुरा (दक्षिण-पश्चिम कोण):

यह देवी दर्शक के बाएँ से तृतीय, ब्रह्माणी के बाएँ किसी जानवर पर आसीन उत्कीर्णित है। इसके वाहन पशु को सुगमता से मेरे द्वारा पहचाना नहीं जा सका; क्योंकि प्रतिष्ठातिलक के अनुसार इसका वाहन उलूक और मुख्य आयुध गदा है; किन्तु यहाँ इस देवी का दाहिना हाथ खाली है और बाएँ हाथ में त्रिशूल आयुध धारण किये हुए दर्शाया गया है, वाहन बैल जैसा कोई पशु है। गले में कंठी पहने अंकित है, पूँछ भी बैल जैसी पतली और लम्बी है; किन्तु स्कन्ध गाय या भैंसे की तरह छोटा है, जबकि भवानी के वाहन वृषभ का स्कन्ध बड़ा है। इस पशु की बैठक बैल की तरह है। इस मातृका के सभी अलंकरण अन्य देवियों जैसे ही शिल्पित हैं। दाहिनी हथेली में रेखाओं का अंकण स्पष्ट है।

वैष्णवी—गरुड़वाहना (दक्षिण दिशा):

यह दक्षिण दिशा की देवी है, प्रारम्भ से चतुर्थ और त्रिपुरा के बाएँ एक पक्षी पर सुखासन में आरूढ़ वैष्णवी मातृका का शिल्पन है। यह एकाननना और चतुर्भुजा देवी है। अन्य देवियों के समान सभी अलंकरणों से अलंकृत

हैं। इसके भी कानों के नीचे केशों की लटें लटक रहीं हैं। इस देवी की दाहिनी एक भुजा दाहिने घुटने पर खुली हुई हथेली की स्थिति में और दूसरे हाथ में शूल या अंकुशनुमा कोई आयुध लिये हुए उत्कीर्णित है। बायीं तरफ का एक हाथ बाएँ घुटने पर रखे हुए, हथेली में शंख धारण किए हुए अंकित है और बायीं तरफ के ही दूसरे हाथ में गदा नुमा कोई मोटा आयुध लिए हुए है, जो खंडित है।

वैष्णवी मातृका एक विचित्र पक्षी पर आरुढ़ अंकित है। इस पक्षी का मुँह, हाथ और पेट मनुष्य के समान हैं, पैर पक्षियों जैसे हैं, व्यवस्थित केश-विन्यास, कानों में बाली, भुजाओं में साधारण भुजबन्द और पेट में नाभि का भी कुशलता से अंकन है। यह वाहन दोनों हाथों से अंजलि बाँधे हुए पक्षी-जैसे पैरों के बल बैठा हुआ दर्शाया गया है। इसके दोनों तरफ दो पंख भी अंकित हैं।

इन्द्राणी—गजवाहना (पूर्व दिशा) :

इन्द्राणी को पूर्व दिशा में स्थापित किया जाता है। यह देवी प्रारम्भ से पंचम और वैष्णवी से बाएँ ऐरावत गज पर सुखासन मुद्रा में अंकित है। इसका मुखमंडल बहुत खंडित है। ऊपर कुछ केश दृष्टिगत होते हैं जो सज्जित हैं, सभी अलंकरण लगभग अन्य देवियों के समान ही हैं। इस देवी के केशों की लटें लटकती हुई नहीं दिखायी देती हैं। इसका वाहन गज भी कलात्मक है। गज के सभी अंग स्पष्ट हैं। यह बैठा हुआ है तथा इसके मस्तक पर एक लम्बा त्रिपुंड दर्शाया गया है। देवी का बायां पैर मुड़ा हुआ और दाहिना पैर गज के ऊपर से लम्बित है।

कौमारी—मयूरवाहना (प्रतीची दिशा) :

इस मातृका की स्थापना प्रतीची दिशा में की जाती है। शिलाफलक पर इसका शिल्पन इन्द्राणी के बायीं ओर और बाएँ से (दर्शक के) छठवें स्थान पर किया गया है। इस देवी का मुखमंडल पूरी तरह खंडित है; लेकिन शिलाखंड पर बने निशान से प्रतीत होता है कि यह एकाधिकानना देवी है। जैन शिल्पशास्त्र 'आचार दिनकर' (बालचन्द्र जैन, जैन प्रतिमा विज्ञान, पृष्ठ ११५) में इसे षण्मुखा कहा गया है। इसके कान, गले, भुजा, हाथ, पैर और कटि के अलंकरण अन्य देवियों जैसे ही हैं। यह द्विभुजा देवी है। इसका बायां हाथ शूल जैसा कोई आयुध धारण किये तथा दाहिना हाथ दाहिने पैर के घुटने पर रखे, हथेली खोले हुए दर्शाया गया है। इसके

वाहन मयूर को उसकी कलगी और पंखों के अंकन से पहचाना जा सकता है।

वाराही—वाराहवाहना (उत्तर दिशा) :

उत्तर दिशा की देवी वाराही को कौमारी मातृका के बाएँ और दर्शक के दाहिने से द्वितीय जंगली वाराह पर आरूढ़ शिल्पित किया गया है। इस देवी का मुख वाराह के मुख जैसा अंकित है। इसके कर्णोत्पल नहीं हैं, बाकी अलंकरण अन्य देवियों के समान ही हैं। यह द्विहस्ता देवी दाहिना हाथ सामने को उठाये हुए शायद वरद् मुद्रा में किये हैं, हस्त खंडित है और बाएँ हाथ में कोई बड़ी सी वस्तु लिए, मुँह के पास किये हुए जैसे खा रही हों, शिल्पित हैं। शूकर बैल जैसा ही बैठा हुआ है, उसकी पूंछ छोटी सी बगल में मुड़ी हुयी अंकित है।

चामुंडा—राक्षसवाहना (उत्तर-पश्चिम कोण) :

चामुंडा देवी का उत्कीर्णन अन्य देवियों से बाएँ अन्तिम कोने पर किया गया है। यह लेटे हुए राक्षस के ऊपर सुखासन में आरूढ़ है। इस देवी का अंग-विन्यास अन्य मातृकाओं की तरह ललित व सुडौल न होकर नामानुरूप कुछ वीभत्स है। इसके मात्र कर्णाभरण, हाथों-पैरों में एक-एक कड़ा, पैजनियाँ, कटिमेखला और धोती सामान्य अंकित हैं। इसके शरीर से ज्वालाएँ-सी निकल रही हैं, आधा पेट अन्दर को धँसा हुआ है। इसकी भुजाएँ दो ही हैं या चार हैं यह स्पष्ट नहीं हो पाता है। बाएं हाथ में दंड या अन्य कोई आयुध को (सम्भवतः) सर्प से लपेटकर अपने मुँह के नीचे किये हुए हैं। दाहिने हाथ में खड्ग धारण किए हुए अंकित हैं। इस देवी के शरीर में सर्प जैसी कुछ वस्तु लपेटी हुई अंकित है।

इस देवी के वाहन राक्षस को जमीन पर दाहिना हाथ और बायीं कुहनी टेककर तथा बायीं हथेली का सिर को सहारा दिये औंधे मुँह लेटे अंकित किया गया है। राक्षस की जटाएँ ऊपर को उड़ रही विकराल हैं, इसके भी हाथों में दो-दो कड़े, कमर में कमरबन्द और कमर से जाँघों तक वस्त्र पहने साधारण ढंग से शिल्पित किया गया है।

अष्टमातृका शिलालेख :

उक्त शिलाफलक पर देवियों के ऊपर दो पंक्तियों में तथा नीचे तीन पंक्तियों में एक लेख उत्कीर्णित है। उसका मैंने जो पाठ कर पाया वह इस प्रकार है :

। । संवत १७०७ शाके १५७२ प्रवर्तमाने । आश्विन शुक्लपक्षे । त्रयोदश्यामा । शुक्रवासरे । श्री विहारवास्तव्येन । महती याः माः···जातीय ।··· वोप···गोत्रेण स० शुलसीदासतभार्या···वण नि···तत्रनयेनस० सयामेण ।··· गोवर्द्धनेनसहत्री राजगृहविपुलगिरौ···साद । ।···ता संघवासयामाणा प० कल्याणकीर्त्युपदेशेन श्रीभवत···। । लीखतरतनसीस···पा···त स···ग्राम मुकाम राजगृही । ।

उक्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् १७०७, शक संवत् १५७२ में इन अष्टमातृकाओं की प्रतिष्ठा करवाकर राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर स्थापित किया गया था, और शिल्पकार भी राजगृह का ही था।

प्रस्तुत अष्टमातृकाओं के शिल्पन में मातृका-क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। आदि की तीन-भवानी, ब्रह्माणी और महालक्ष्मी तीन विदिशाओं की, उनके बाद की चार वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी और वाराही क्रमशः उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की देवियाँ हैं तथा अन्त की चामुण्डा दक्षिण-पश्चिम कोण विदिशा की देवी हैं।

उक्त शिल्पाकृति की रजि० संख्या—NAL/BH 25 है।

जैन कथा-साहित्य

श्री फूलचन्द्र जैन 'सारंग'

जैन साहित्य का महत्त्व

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्‌मय में जैन साहित्य का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रबंध, चम्पू, नाटक, कथा आदि ललित साहित्य और गणित, वैद्यक, ज्योतिष, भूगोल, नीति, दर्शन आदि उपयोगी साहित्य के सभी क्षेत्रों में जैन धर्म की देन बहुत ही पुष्ट और समृद्धिशाली है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि पुरातन भारतीय भाषाओं तथा दक्षिण की तमिल, तेलगू, कन्नड़ और गुजराती, मराठी आदि प्रान्तीय भाषाओं में यह साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। अभी बहुत सा जैन साहित्य अन्धकारग्रस्त है, पर जो कुछ भी साहित्य प्रकाश में आया है उससे भली-भांति स्पष्ट है कि भारत के सांस्कृतिक अनुशीलन में अन्य धर्म और जातियों की अपेक्षा जैन साहित्य के पृष्ठ कहीं अधिक प्राणवान् और स्फूर्तिदायक हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-निर्माण में भी जैन साहित्य का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जैसे-जैसे अपभ्रंश भाषा में रचित जैन साहित्य पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जा रहा है वैसे-वैसे हिन्दी के उद्भव और विकास की कहानी अधिक सुसंगत और स्पष्ट होती जा रही है। इधर जो अपभ्रंश भाषा में जैन चरित्र काव्यों की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है उसने तो हिन्दी की साहित्यिक परम्परायें और उसके काव्य के रूपों के अध्ययन के लिये एक नया दृष्टिकोण हिन्दी के विद्वानों को प्रदान किया है। अब केवल एक धर्म या सम्प्रदाय विशेष का साहित्य कह कर जैन काव्यग्रंथों की अवहेलना नहीं की जा सकती। हिन्दी साहित्य के विकास में उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अब स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जा रहा है। जिस पुष्प कवि को हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा का प्रथम कवि बताया है वे और कोई नहीं, अपभ्रंश के सुप्रसिद्ध जैन कवि पुष्पदन्त ही हैं जिन्होंने महापुराण, यशोधर-चरित्र और नागकुमारचरित्र आदि ग्रंथों की रचना की है। महाकवि स्वयंभू को हिन्दी भाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार करते हुए महापंडित राहुल सांकृत्यायन के ये शब्द कितने महत्वपूर्ण हैं "स्वयंभू कविराज कहे गये हैं, किन्तु इतने से स्वयंभू की महत्ता को नहीं समझा जा सकता। मैं समझता हूँ

आठवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक की तेरह शताब्दियों में जितने कवियों ने अपनी अमर कृतियों से हिन्दी साहित्य को पुष्ट किया है उनमें स्वयंभू सबसे बड़े कवि हैं। मैं ऐसा लिखने की हिम्मत नहीं करता, यदि हिन्दी के चोटी के कवियों ने स्वयंभू 'रामायण' के उद्धरणों को सुनकर यह राय प्रकट न की होती।" स्वयंभू ने पउमचरिउ (रामायण), रिट्ठणेमि चरिउ, पंचमीचरिउ आदि रचनाओं द्वारा चरित्रकाव्यों की जिस साहित्यिक परम्परा को अंकुरित किया उसका सीधा विकास हमें तुलसी के 'रामचरितमानस' और सूफियों के लौकिक प्रेम कथानकों में मिलता है। लोक भाषा में रचित इन चरित काव्यों के विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन समीचीन ही है "इन चरित काव्यों के अध्ययन से परवर्तीकाल के हिन्दी साहित्य के कथानकों, कथानक रूढ़ियों, काव्य रूपों, कवि-प्रसिद्धियों, छंदयोजना, वर्णनशैली, वस्तुविलास, कविकौशल आदि की कहानी बहुत स्पष्ट हो जाती है। इसलिये इन काव्यों से हिन्दी साहित्य के विकास के अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है।"

कथा-प्रधान जैन साहित्य

लोकजीवन में अपने विचारों के प्रतिपादन के लिये जैन साहित्य के मनीषी कलाकारों ने स्फुटगीतों और मुक्तक छन्दों की अपेक्षा कथाकाव्यों का अधिक सहारा लिया है। सत्य तो यह है कि जैन साहित्य में उसका कथा साहित्य बहुत ही पुष्ट अंग है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में बहुत ही विशाल परिमाण में रचा गया है। उसमें एक ओर जहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के विशाल चरितकाव्य हैं, जिनका सृजन अनेक लोकरंजक, ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक कथाओं के आधार पर हुआ है, वहाँ दूसरी ओर प्राकृत के आगम ग्रंथों की टीका-टिप्पणियों, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा जैनाचार्यों द्वारा रचित विविध कथाकोषों में नीति और उपदेशपूर्ण लघु कथाएँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टियों से इस कथा साहित्य की भाव भूमि बड़ी उदात्त और गहन है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो जैन कथा ग्रंथ अपनी परिधि में भारतीय इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति को संजोए हुये हैं। पुराण ग्रंथों को तो वैसे भी इतिहास की कोटि में रखा जाता है। तीर्थंकरों, चक्रवर्ती सम्राटों को लेकर अनेक पुराणों की रचना हुई है। महाभारत के समान हरिवंश

पुराण और पाण्डव पुराण तथा रामायण के कथानक के समान पद्मपुराण जैसे बड़े पुराण ग्रंथ भारतीय पौराणिक साहित्य को जैन साहित्य की महत्वपूर्ण देन है। अन्य जैनेतर पौराणिक साहित्य से जैन पौराणिक साहित्य की विशेषता यह है कि इनमें ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश कहीं अधिक है। दूसरे शब्दों में जैन पुराण वस्तुतः ऐतिहासिक चरित काव्य हैं। उनके पात्र अमानवीय और सर्वथा पौराणिक न होकर मानवीय और ऐतिहासिक हैं, इसीलिये हमारे जीवन के वे अधिक निकट हैं। इन जैन पुराणों में वर्णित घटनायें भी कपोल-कल्पित नहीं जान पड़ती और इसमें भी सन्देह नहीं कि इन पुराणों के आधार पर भारतीय इतिहास की धूमिलता को बहुत बड़ी सीमा तक दूर किया जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से भी इन कथा ग्रन्थों का स्थान बहुत ऊँचा है। इस सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी के शब्द उद्धृत करना समीचीन ही होगा—"भारतवर्ष के पिछले ढाई हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास का सुरेख चित्रपट अंकित करने में जितनी विश्वस्त और विस्तृत उपादान सामग्री इन कथाओं में मिल सकती हैं उतनी अन्य किसी प्रकार के साहित्य में नहीं मिल सकतीं। इन कथाओं में भारत के भिन्न-भिन्न धर्म, सम्प्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यों के नाना प्रकार के आचार-व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श शिक्षण, संस्कार, रीति-नीति, जीवन-पद्धति, राजतन्त्र, वाणिज्य-व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाजसंगठन, धर्मानुष्ठान एवं आत्मसाधन आदि के निर्देशक बहुविध वर्णन निबद्ध किये हुये हैं जिनके आधार से हम प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सर्वाङ्गी और सर्वतोमुखी मानचित्र तैयार कर सकते हैं।"

जैन कथा साहित्य की बहुत बड़ी विशेषता उसके साहित्यिक और कलात्मक रूप में है। हम इस सम्बन्ध में इसी निबन्ध में आगे विचार करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन कथा, कहानियों के रूपों में जन-जीवन के सारभूत प्रसंग मणिमुक्ताओं की भांति पिरोये हुये हैं। यह सत्य है कि जैन कथा साहित्य की मूल संवेदना उसकी धार्मिक चेतना है, परन्तु दर्शन और नीति की शुष्कता को जैन कथाकारों द्वारा सरलता और रोचकता के सांचे में बड़ी कुशलता के साथ ढाला गया है। जन-जीवन के व्यापक धरातल पर टिके हुए रहने के कारण उसका रूप बड़ा प्राणवान् और चेतनाशील है। उसमें मानव जीवन की अनेक मानवताओं को मूर्त्तरूप प्रदान

किया गया है। अनेक भंगिमाओं और अनेक चित्रों को सजाया गया है। इसीलिये तो जैन कथा साहित्य इतना मर्मस्पर्शी और भावपूर्ण बन सका है।

जैन कथा साहित्य की सार्वभौमिकता

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण जैन कथा साहित्य लोकजीवन में अनन्य लोकप्रियता को प्राप्त हुआ है। उसकी लोकप्रियता का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व जैन कथाकारों ने जिन कहानियों का प्रणयन किया वे आज भी लोककथाओं के रूप में भारत के सभी प्रदेशों में प्रचलित हैं। जैन आगमों में राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के बुद्धि-चातुर्य की जो कथा है वह अपने उसी रूप में हरियाणा के लोकसाहित्य में अढाई द्वैत की कथा के नाम से प्रसिद्ध है और दक्षिण के जेमिनी स्टुडियो ने इस कथा के आधार पर मंगला चित्रपट का निर्माण किया है। इसी प्रकार शेर और खरगोश की कहानी जिसमें खरगोश शेर को कुएँ में अन्य शेर की परछाईं दिखाकर ठगता है। भिखारी का सपना जिसमें स्वप्न में हवाई किला बनाता हुआ भिखारी अपनी एक मात्र सम्पत्ति दूध की हांडी को फोड़ डालता है। नील सियार की कहानी जिसमें सियार अपने को नील रंग में रंगकर जंगल का राजा बन बैठता है। बन्दर और वया की कहानी जिसमें बन्दर वया के उपदेशों को अनसुना करके उसके घोंसले को नष्ट कर डालता है आदि अनेक कहानियां आज भी सर्वसाधारण में प्रचलित हैं। ये ही कहानियां जैन साहित्य के अतिरिक्त हमें बौद्ध जातकों, पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर आदि जैनेतर कथा साहित्य में भी प्राप्त होती हैं। इसका अभिप्राय यही है कि जैन कथा साहित्य सार्वभौमिकता की व्यापक भावभूमि पर खड़ा हुआ है। हम उसे किसी समुदाय या धर्म-विशेष की संकुचित सीमाओं में नहीं बांध सकते और न उसका क्षेत्र किसी एक देश या युग तक ही सीमित है। उसका विश्वव्यापी महत्त्व है और युग विशेष से ऊपर उठ कर वह विश्वसाहित्य की चिरन्तन और शाश्वत धरोहर है। समग्र मानवजाति की वह अमूल्य सम्पत्ति है और यह प्रसन्नता की बात है कि इसी सार्वजनीन और सार्वभौमिक रूप में जैन कथा साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति का उपयोग भी हुआ है। जैन कथा साहित्य न केवल भारतीय कथा साहित्य का जनक रहा है, अपितु सम्पूर्ण विश्व कथा साहित्य को उसने प्रेरणा दी है। भारत की सीमाओं को लांघकर जैन कथाएँ अरब, चीन, लंका, योरोप आदि देश-देशान्तरों में पहुँची हैं और अपने मूल स्थान की भांति वहाँ भी लोकप्रिय

हुई हैं। योरोप में प्रचलित अनेक कथाएँ जैन कथाओं से अद्भुत साम्य रखती हैं। उदाहरण के लिये 'नायाधम्मकहा' की चावल के पांच दाने की कथा कुछ बदले हुए रूप में ईसाइयों के धर्मग्रन्थ 'बाइबिल' में प्राप्त होती है। चारुदत्त की कथा का कुछ अंश जहाँ वह बकरे की खाल में बन्द होकर रत्नदीप पर जाता है सिन्दवाद जहाजी की कहानी से पूर्णतः मिलता-जुलता है। प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान ट्वानी ने कथाकोश की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि विश्व कथाओं का फलस्रोत जैनों का कथा साहित्य ही है, क्योंकि जैन कथाकोशों की कहानियों और योरोप की कहानियों में पर्याप्त साम्यता है तथा यह भी निश्चित है कि ये सब की सब कहानियां जैन कथा साहित्य से उधार ली गई हैं। ट्वानी ने अनेक उदाहरणों द्वारा इस बात को सिद्ध किया है।

प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान प्रोफेसर जैकोबी ने अपनी 'परिशिष्ट पर्व' की भूमिका में एक स्त्री और उसके प्रेमी की एक जैन कथा को उद्धृत किया है। आश्चर्य की बात है कि यही कहानी ज्यों की त्यों चीन के लोकसाहित्य में प्रचलित है और फ्रांस में भी कुछ रूपान्तर के साथ लोकप्रिय है। 'अलिफलैला' (आरबोपन्यास) की कहानियों का मूल आधार भी जैन कथा-साहित्य है, यह बात कुछ आश्चर्यजनक सी प्रतीत होती हुई भी सत्य है। 'अलिफलैला' में एक वजीर की लड़की बादशाह की मलिका बन कर प्रति रात्रि एक कहानी सुना कर अपने प्राण बचाती है। इसी प्रकार आवश्यक-चूर्णि की कहानी 'चतुराई का मूल्य' है जिसकी नायिका कनकमंजरी प्रति रात्रि एक कहानी सुनाने का लोभ देकर अपने पति को जो कि राजा है ६ मास तक अपने पास रोके रहती हैं। 'नायाधम्मकहा' की 'प्रलोभनों को जीतो' कहानी का कथानक अलिफलैला की कहानियों से बहुत साम्य रखता है।

जैन कथाओं की यह यात्रा योरोप आदि देशों में किस प्रकार हुई यह एक शोधनीय विषय है। प्राय विद्वानों का मत है कि जैन धर्म का प्रचार भारत से बाहर कम हुआ है; अतः विदेशों में जो जैन कथाएँ प्राप्य हैं वे बौद्ध साहित्य के माध्यम से पहुँची हैं। पर यह भ्रमात्मक धारणा है। आधुनिक अनुसंधानों से यह भली-भांति स्पष्ट हो चुका है कि बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म का प्रचार भी विदेशों में प्रबल वेग से हुआ था। इस बात के प्रमाण आज मिलते हैं। डेढ़ हजार वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में बहुत से जैनी अरब देश

से आकर बसे थे। अरब देश में जैन धर्म किसी समय अत्यन्त व्यापक रूप से फैला हुआ था यह बात निश्चित है। मौर्य सम्राट् सम्प्रति ने अरब और ईरान में जैन मुनियों का विहार करवाया था। दक्षिण में तिरुमलय पर्वत के शिलालेख में 'एलानीया यवनिका', 'राजराज पावगत' और 'विदुगहलगिय पेरुमल' नाम के जैन धर्मावलम्बी राजाओं का उल्लेख है। इनका सम्बन्ध स्पष्ट रूप से अरब देश से था। अन्तिम राजा पेरुमल ने तो मक्का की यात्रा भी की थी। जिन देशों में भगवान् महावीर का विहार हुआ उनमें श्री जिनसेनाचार्य ने यवनश्रुति, क्राथतोय, सुरभीरु तार्णकार्ण आदि देशों का भी उल्लेख किया है। ये निश्चय ही भारत से बाहर के देश हैं। इनमें से यवनश्रुति आज कायूनान है। काथतोय लालसागर के निकटवर्ती प्रदेश हैं। इस प्रकार इन प्रदेशों में जैन धर्म के प्रचार के रूप में जैन कथाएं भी पहुंची होंगी और वहाँ के साहित्य में उन्होंने। महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया होगा।

जैन कथाओं का साहित्यिक अनुशीलन

जैन धर्म का दर्शन विशेष की अभिव्यक्ति का माध्यम होते हुये भी इसकी कथायें विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं यह बात निःसंकोच रूप से स्वीकार की जा सकती है। सत्य तो यह है कि कथासाहित्य का ध्येय लोकरुचि का मनोरंजन मात्र ही नहीं है, अपितु इसके साथ-साथ अपने पाठकों को विचारों की सामग्री भी प्रदान करना है। आधुनिक कथासाहित्य की यही मूल चेतना है। आज की सभी उत्कृष्ट कहानियाँ और उपन्यास निश्चय रूप से किसी न किसी विचारदर्शन से प्रभावित हैं—चाहे वह फ्रायड का यौनवाद हो अथवा मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अथवा गाँधीजी का विचारदर्शन। आज वे कथाकार मूल रूप से इन विचारधाराओं से प्रभावित अपनी संवेदनाओं के अनुकूल कल्पना के सहारे कथानक चुनते हैं, पात्रों की योजना करते हैं और प्रभावोत्पादक शैली द्वारा कथा साहित्य की सृष्टि करते हैं। एक निश्चित संवेदना (जिसे अन्य शब्दों में कथाकार का उद्देश्य ही कहा जा सकता है) कथानक, पात्र और शैली आज के कथा साहित्य के ये ही मूल तत्व हैं। आज से हजारों वर्ष पूर्व रचे गये जैन कथा साहित्य ने अपने भीतर इन मूल तत्वों का समावेश कर कहानी-कला के मर्म को भली-भाँति समझ लिया था।

आधुनिक कथा साहित्य की भांति जैन कथा साहित्य भी भावगत प्रवृत्ति की दृष्टि से एक निश्चित विचारदर्शन को लेकर चला है और वह विचार-

दर्शन है उसका कर्मवाद। इस मानव-संसार में मनुष्य अपने बुरे कर्मों द्वारा नाना प्रकार की यातनाएँ भोगता है। एक जन्म में ही नहीं, अनेक जन्मों में उसे बुरे कर्मों का फल प्राप्त होता है। संसार में रहते हुए जिन प्राणियों के साथ उसने बुरा व्यवहार किया था किसी न किसी रूप में उसके दुष्कर्मों का बदला चुकाया जाता है। इसके विपरीत शुभ कर्म करने वाले सदैव सुख प्राप्त करते हैं। पापात्माओं द्वारा सताये जाने पर देव आदि उनकी रक्षा करते हैं। एक जन्म में कष्ट सहकर दूसरे जन्म में वे अनन्य सुख का भोग करते हैं। कर्मवाद की इसी भावभूमि को लेकर प्रायः समस्त जैन कथासाहित्य रचा गया है। मनुज समाज को बुराई से बचने और भलाई में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देना ही इस कथासाहित्य की मूल चेतना है। इसी मूल चेतना के आधार पर जैन कथाकारों ने अपने कथानकों में ऐसी घटनाओं को जन्म दिया है जिनके द्वारा साधारण मनुष्यों के हृदयों में पापकर्मों की ओर से अरुचि हो तथा शुभ कार्यों के प्रति लगन हो। ऐसे सत्-असत् पात्रों की योजना की है जिनके चरित्र एक ओर बुराई से घृणा करना सिखाते हैं और दूसरी ओर आदर्श जीवन की ओर प्रेरित करते हैं, क्योंकि जैन कथासाहित्य की प्रायः सभी कहानियों में बुरे पात्रों का अन्त दुःखात्मक होता है और सत् पात्र अनेक कष्ट सहन करते हुए अन्त में विजयी होते हैं और सुख के भागी बनते हैं। इस प्रकार मूल रूप से सम्पूर्ण जैन कथासाहित्य आदर्शोन्मुखी है। यह आदर्शवादिता जैन कथासाहित्य की ही विशेषता नहीं है, वरन् सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ही आदर्शवादिता की सुरभि से सुवासित है। भारतीय साहित्य के सभी प्रबंध काव्य, चाहे वे संस्कृत के हों अथवा हिन्दी के, आदर्श मूलक हैं। संस्कृत नाटकों का पाश्चात्य नाटकों के विपरीत सुखान्त होना आदर्शवादी भावना का ही परिचायक है। आदर्शोन्मुखी जैन कथासाहित्य ने भी इसी गौरवमयी भारतीय परम्परा को अधिक सजगता के साथ सुरक्षित बनाए रखा है।

आदर्शोन्मुखी होते हुए भी जैन कथासाहित्य जीवन के यथार्थ धरातल पर टिका हुआ है। यह धरातल ऐतिहासिक घटनाओं और सामाजिक जीवन की विविध भंगिमाओं से निर्मित हुआ है। ऐतिहासिक कथानक प्रायः राजकुलों से ही सम्बन्धित हैं और यह स्वाभाविक भी है; परन्तु सामाजिक जीवन से जो कथानक चुने गये हैं वे सभी वर्गों के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इन सामाजिक कथानकों का भावक्षेत्र इतना विस्तृत है कि न केवल मानव-समुदाय, अपितु पशु-पक्षियों को उनमें स्थान मिला है। फिर भी जैन कथा-

साहित्य में वणिक समुदाय को अधिक प्रमुखता मिली है। संभवतः इस कारण इस समाज में ही जैन धर्म का अधिक प्रचार होता है। कथानकों के रूप में जिन घटना व्यापारों की योजना की गई है वे इतनी अमानवीय और अतिरंजनापूर्ण नहीं हैं कि उन पर अविश्वास किया जा सके। वैसे अनेक कहानियों में विद्याधरों का आ टपकना, विद्याओं की सिद्धि और मंत्र के चमत्कार से अद्‌भुत घटनाओं की सृष्टि आदि अभौतिक और अमानवीय तत्व मिल सकते हैं, किन्तु जिन कहानियों में ऐसी अलौकिक बातें नहीं हैं वे कहानियाँ विशुद्ध यथार्थ की दीप्ति से दीपित हैं और पूर्णरूप से हमें अपने जीवन की ही चिरपरिचित घटनाएँ जान पड़ती हैं।

रचना-विधान की दृष्टि से ये कथानक सर्वथा इतिवृत्तात्मक हैं। उनकी गति में अधिक जटिलता नहीं है। बड़ी कहानियों में अवश्य कथानक अनेक भाव-चेतनाओं को स्पर्श करते हुए पंचतंत्र की कहानियों की भांति अनेक शाखा-प्रशाखाओं में बँट गये हैं। एक ही कहानी में अनेक छोटे-बड़े स्वतन्त्र कथानक गुंथे हुए हैं। इन प्रासंगिक कथानकों को निश्चित रूप से स्वतन्त्र कहानियों का रूप दिया जा सकता है। लघु कथाओं का रूप बड़ा ही कलात्मक है और उनमें कम पात्रों तथा कम घटना-व्यापारों द्वारा मानव-जीवन के सारभूत प्रसंगों की बड़ी तीव्रतम व्याख्या हुई है।

वस्तुविन्यास की दृष्टि से इन कथानकों के सहज ही तीन भाग किये जा सकते हैं। आरम्भ, मध्य और अन्त। कथा के आरम्भ भाग में हमें मुख्य पात्रों का परिचय, कहानी की वास्तविक समस्या का संकेत और आगे आने-वाली घटनाओं का सूत्र मिलता है। मध्य भाग में घटनाओं का विस्तार, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उभार मिलता है। यहीं कहानी की आत्मा वास्तविक रूप से प्रस्फुटित होती है। कहानी का अंतभाग उसकी चरम सीमा है। यहाँ कथाकार अपने पाठकों को एक निश्चित लक्ष्य पर लाकर छोड़ देता है। कहानी की मूल चेतना कथाकार के सन्देश को पाठकों तक पहुँचाती हुई अपने प्रकृत रूप में व्यक्त होती है।

यह सत्य है कि जैन कथा साहित्य में घटनाबहुल कथानकों की ही प्रधानता है, फिर भी कथानक घटनाप्रधान नहीं कहे जा सकते। इसका स्पष्ट कारण है। घटनायें यहाँ निमित्त मात्र बनकर आती हैं और उन का मूल उद्देश्य पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारते हुए पाठक को एक निश्चित लक्ष तक पहुँचाना होता है। कथाकार घटनाओं की योजना इस ढंग से करता है कि असत् पात्रों का क्रोध, मान, मद, मोह, लोभ, हिंसा आदि

मलिन वासनाओं से आच्छन्न चरित्र अपने प्रकृत रूप में पाठकों के सामने रखा जा सके, तथा सद् पात्र असद् पात्रों द्वारा निरन्तर कष्टभोगी होने पर भी आदर्श चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत कर सके। इन असद् पात्रों का कहीं तो बड़ा करुणाजनक अन्त होता है और कहीं चरित्र परिवर्तन के द्वारा वे भी आदर्श जीवन व्यतीत करने लगते हैं। असद् पात्रों के चरित्र परिवर्तन में आकस्मिक घटनाओं की अवतारण बहुत कम की गई हैं। इसके विपरीत यह चरित्र परिवर्तन या तो मुनि उपदेश के प्रभाव से हुआ है अथवा दूसरों का खोटे कर्मों द्वारा बुरा अन्त देखकर अथवा सद् पात्रों के ही आदर्श जीवन से प्रभावित होकर अथवा अपने दुःखित जीवन के पश्चात्ताप द्वारा।

कथानक की भांति जैन कथा साहित्य की पात्रयोग्यता भी बड़ी व्यापक और गहन है। उसमें राजा से लेकर रंक, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल, साहूकार से लेकर चोर, स्त्री से लेकर वेश्या सभी वर्गों के पात्रों का समावेश है। नारी, पुरुष, बाल, वृद्ध, युवा, मुनि, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, देव यहाँ तक कि पशु-पक्षी सभी पात्र रूप में जैन कथा कहानियों में विद्यमान हैं। कहानियों के नारी और पुरुष दोनों ही पात्र सत्-असत् प्रवृत्तियों को लिये हुए हैं। दोनों का ही व्यक्तित्व कहानियों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। घटनाएँ उनके कर्मशील जीवन को ही केन्द्र बना कर गतिशील होती हैं। सत्य तो यह है कि कथा साहित्य के सभी पात्र सजीव और यथार्थ हैं। वे अपने चरित्र की दुर्बलताओं और शक्तियों से हमारे हृदय को स्पर्श करते हैं। घटनाओं के घात-प्रतिघात में उनका कहीं उत्थान होता है, कहीं पतन। समग्र रूप से कथाकार ने अपने पात्रों को प्रकृत रूप में ही हमारे सामने रखा है।

आज की कहानियों की भाँति मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, उनके चरित्र का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, उनके अन्तरतम के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन इन कथा-कहानियों में प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि आज के कहानीकार का मुख्य ध्येय ही अपने पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण है। परन्तु इन पुरातन कथा-कहानियों में कथानक की भाँति पात्र भी निमित्त मात्र हैं। इसलिये इन कहानियों को हम स्पष्ट रूप से चरित्र-प्रधान भी नहीं कह सकते। पात्रों की अवतारणा वस्तुतः बुराई का अन्त बुराई में और भलाई का अन्त भलाई में दिखाने के लिये की जाती है। कथाकार को इतना अवकाश ही नहीं होता कि वह परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच डूबते-तैरते हुए पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करे। फिर जिन साधारण पाठकों के लिये इन कथाओं की योजना की गई थी उनके लिये ऐसा अपेक्षित भी न था। कहा-

नियों का मनोरंजक इतिवृत्त ही उनके लिये यथेष्ठ था। इसीलिये इन कथा कहानियों की चरित्रचित्रण प्रणाली भी इतिवृत्तात्मक है। आज की भाँति तब मुद्रणकला की सुविधाएँ भी नहीं थीं। कहानियों का प्रचार मौखिक रूप से ही होता था, फलतः कहानियों का रूप सीधा-सादा होता था जो साधारण स्तर के पाठकों को सहज ही हृदयंगम हो सके। उस समय के कथाकार के लिये कथानक या चरित्र विश्लेषण को लेकर किसी प्रकार के कलात्मक सृजन की न तो आवश्यकता ही थी और न ऐसा उचित ही था।

तब मुद्रण यंत्र के अभाव और कहानियों के मौखिक प्रसार के कारण आज की कहानियों तथा प्राचीन कहानियों के शैली-विधान में भी पर्याप्त अन्तर है। आज की कहानियाँ शैली की दृष्टि से अनेक रूप लिये हुये हैं। कहीं वे कथात्मक हैं, कहीं आत्मचरित्र शैली में लिखी गई हैं। कहीं उनका रूप ऐतिहासिक है जहाँ कहानीकार अपनी ओर से हो कथावाचक की भाँति कहानी कहता चलता है। कहीं यह शैली नाटकीय है। प्रारम्भ भी कहानी का अब बड़े आकर्षक ढंग से किया जाता है। परन्तु प्राचीन कहानियों में ये सब बातें नहीं हैं। शैली की दृष्टि से सभी कहानियाँ इतिवृत्तात्मक हैं और उनका पात्र 'चम्पापुरी नगरी में जिनदत्त नामक सेठ रहता था' ऐसे वाक्यों से होता है। सम्पूर्ण कहानी का रूप इसी प्रकार का होता है जैसे कोई व्यक्ति किसी घटना को अपने साथियों को सुना रहा हो। अंग्रेजी की प्राचीन कहानियाँ तथा अरब की पुरानी कहानियाँ भी इसी प्रकार की हैं, जैसे 'वन्स अपॉन अ टाइम' (once upon a time) तथा 'एक दफा का जिक्र है कि'।

इस प्रकार भावगत और रचनागत दोनों ही रूपों में जैन कथा साहित्य बहुत ही पुष्ट और प्राणवान् है। उसमें नीति, धर्म और साहित्य का मणिकांचन संयोग है। साहित्य का मूल प्रयोजन ही मानव भावनाओं को परिष्कृत करना, उसे पशु सतह से ऊपर उठाना, उसकी कलात्मक अभिरुचि को स्वस्थ उपादान प्रदान करना है। इसी में साहित्य मानवता का पथ प्रदर्शक है। सम्पूर्ण जैन कथा साहित्य के इसी मूल प्रयोजन के चेतना रस से अनुप्राणित है। विशुद्ध साहित्य की व्यापक भूमिपर खड़े होकर उसने मनुज समाज को मानवता का निखिल सौन्दर्य प्रदान किया है। उस में साहित्य के कलात्मक माध्यम द्वारा अहिंसा, करुणा, क्षमा, त्याग, दया, संयम आदि उदात्त वृत्तियों का ज्वलन्त सन्देश है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में जैन कथा साहित्य शीर्ष स्थान पर विराजमान होने योग्य है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

चतुर्थ सर्ग

जम्बूद्वीप के मध्यस्थित पूर्व विदेह के पुष्कलावती विजय में सीता नदी के तट पर सरोवर के मध्यस्थित कमल की भाँति रत्नमय पुण्डरिकिनी नामक एक नगरी थी। उस नगरी में मृत्युलोक के इन्द्र-से शत्रुओं के मनोरथ भग्न करनेवाले, वीरों में अग्रगण्य घनरथ नामक एक राजा राज्य करते थे। समुद्र के गंगा और सिन्धु की तरह उनके दो पत्नियाँ थीं प्रियमती और मनोरमा। बज्रायुध का जीव ग्रैवेयक विमान से च्युत होकर रानी प्रियमती के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। रात्रि के शेष याम में उसने स्वप्न में एक मेघपुँज जो कि वज्र और विद्युतपात सहित वर्षण कर रहा था अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा। सुबह उसने स्वप्न-कथा राजा से कही। वे बोले, तुम्हारा जो पुत्र होगा वह मेघ की तरह पृथ्वी का संताप हरण करेगा।

सहस्रायुध का जीव ग्रैवेयक विमान से च्युत होकर मनोरमा के गर्भ में आया। उसने स्वप्न में घण्टिकायुक्त ध्वज-पताका शोभित रथ को अपने मुख में प्रवेश करते देखा। उसने भी दूसरे दिन सुबह राजा से यह बात कही— राजा बोले, तुम्हारा पुत्र महारथी एवं महान योद्धा होगा।

यथा समय दोनों ने सूर्य और चन्द्र की भाँति क्रमशः दो पुत्रों को जन्म दिया। एक शुभ दिन राजा ने स्वप्न दर्शन के अनुसार प्रियमती के पुत्र का नाम रखा मेघरथ और मनोरमा के पुत्र का नाम रखा दृढ़रथ। मेघरथ और दृढ़रथ परस्पर स्नेहशील होकर वासुदेव और बलदेव की तरह बड़े होने लगे। क्रमशः उन्होंने मदन निलय, तरुणियों को आकर्षित करने में मन्त्र रूप और सौन्दर्य का उत्स यौवन प्राप्त किया।

सुमन्दिरपुर के राजा निहतशत्रु के मन्त्री एक दिन घनरथ की राजसभा में आए और घनरथ को नमस्कार कर बोले, देव, विभिन्न गुण युक्त आपका यश यूथी फूल की गन्ध की तरह या चन्द्र की चन्द्रिका की तरह किसके हृदय को आनन्दित नहीं कर रहा है। दूर रहने पर भी आपके मित्र निहतशत्रु आपसे सम्बन्ध स्थापित कर आपके स्नेह के आकांक्षी हैं। राजा निहतशत्रु के त्रिलोक की साररूपा तीन कन्याएँ हैं। वे उनमें से दो को कुमार मेघरथ को एवं तीसरे को कुमार दृढ़रथ को देना चाहते हैं। आप परस्पर बान्धव बनिए।

घनरथ ने इस सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए कहा—हमारी मित्रता इस सम्बन्ध से दृढ़ होगी। पार्वत्य नदी की तरह परस्पर मिलित होकर आर्यों के बन्धुत्व क्रमशः वर्द्धित होते हैं।

मन्त्री बोले, महाराज, तब उत्तम नैमित्तिकों को बुलाकर शुभ कार्य का शुभ मुहूर्त स्थिर करिए। कामदेव-से रूपवान राजकुमारों को हमारे राज्य में भेजिए। विवाह के बहाने आपको सम्मानित करने का हमें अवसर दीजिए।

नैमित्तिकों के शुभ दिन निश्चित करने पर कुमारों का जाना स्वीकृत कर घनरथ ने मन्त्री को विदा दी। मन्त्री आनन्द-चित्त शीघ्र सुमन्दिरपुर लौटकर यह शुभ समाचार देकर निहतशत्रु को आनन्दित किया।

राजा घनरथ मदन जैसे वसन्त सहित गमन करता है वैसे ही दृढ़रथ सहित मेघरथ को सुमन्दिरपुर भेजा। सामन्त नृपति, मन्त्री, सेनापति और सैन्य से परिवृत्त होकर राजकुमारों ने पार्वत्य नदी की तरह निर्बाध यात्रा की। दीर्घ पथ अतिक्रम कर उन्होंने राजा सुरेन्द्रदत्त के समुद्र सीमा-सी राज्य सीमा के पास छावनी डाली। वहाँ सुरेन्द्रदत्त द्वारा प्रेरित दूत मेघरथ के निकट आया और गर्वित भाव से बोला—

सुरेन्द्र की तरह पराक्रमी हमारे महाराज सुरेन्द्रदत्त ने आपको यह आदेश दिया है कि आप हमारी राज्य सीमा में प्रवेश न करें। आप अन्य पथ से जाएँ। जिस पथ पर सिंह अवस्थान करता है मृगों का उस पथ से जाना उचित नहीं।

यह सुनकर मेघरथ हँसे और बोले, यही पथ ही सीधा पथ है। तब हम इसका परित्याग क्यों करें? नदी गह्वरों को पूर्ण करती है; वृक्षों को उन्मूलित करती है और उच्च भूमि को निम्न भूमि में बदल देती है। किन्तु अपना पथ नहीं छोड़ती। अतः हम भी सीधे पथ से ही जायेंगे। तुम्हारा प्रभु सरल नहीं हैं, यदि उसमें शक्ति हो तो हमें रोके।

दूत शीघ्र लौटा और मेघरथ ने जो कुछ कहा था सब कुछ राजा सुरेन्द्रदत्त को निवेदित किया। उसकी बात सुनकर क्रोध से सुरेन्द्रदत्त का मुख तप्त ताम्रवर्ण-सा हो गया। एक हस्ती की चिंघाड़ सुनकर जैसे अन्य हस्ती चिंघाड़ उठते हैं वैसे ही उन्होंने युद्ध का नगाड़ा बजवाया। उनकी बृहद् सेना हस्ती, अश्व, पदातिक और रथी युद्ध के लिए उन्मुख हो गये। सेनाओं द्वारा बाहों पर ताल ठोकने से, धनुष की प्रत्यंचाओं के निर्घोष से, अश्व के ह्रेषारव से, रथों के घर्घर शब्दों से, हस्तियों के वृंहतिनाद से, ऊँटों की तीक्ष्ण आवाज से, गर्दभों की रासभ राग से, भेरी निर्घोष के मेघमन्द्र स्वर से पृथ्वी को बधिर

करते हुए राजा सुरेन्द्रदत्त मेघरथ को युद्ध का अतिथि बनाने के लिए उसी मुहूर्त में सैन्यदल लेकर युद्ध यात्रा को निकल पड़े।

मेघरथ और दृढ़रथ भी जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करने के लिए रथ पर आरोहण करता है उसी प्रकार युद्ध के लिए जैत्र नामक रथ पर चढ़े। उभय पक्षों के सैन्यदल द्वारा यन्त्र व हाथों द्वारा आकाश में उत्क्षिप्त अस्त्र-रूपी मेघ से वेधनिका, बरछी, चक्र, वल्लम, गदा, मुद्गर और तीर—शर-निर्मित तीर, मुषिक पुच्छ तीर, लौह तीर आदि, प्रस्तर एवं लौहपिण्ड बरसाने लगे। तदुपरान्त उभय पक्षों के सैन्यदल अतिशय निकट हो जाने से तलवारों से तलवार का अनवरत युद्ध होने लगा जिससे खेचर रमणियों के लिए उस युद्ध को देखना प्रायः असम्भव हो गया। क्षेपणास्त्र से क्षेपणास्त्र भग्न हो गया, रथ से रथ इस भाँति विदीर्ण हो गया मानो दो जलदानव समुद्र में युद्ध कर भग्न और विदीर्ण हो गए। कुमारों की सेना शत्रु सेना की अग्रगति से आँधी जैसे वृक्ष-समूहों को भग्न कर देती है उसी प्रकार भग्न हो गयी।

स्व अंगरक्षकों को भग्न होते देख क्रुद्ध महाबली राजकुमार हस्ती जैसे सरोवर में प्रवेश करता है उसी प्रकार शत्रु सेना के मध्य प्रवेश किया। शत्रु सेना को अब शर-जाल से मानो अन्धकार हो गया है ऐसे उद्वेलित समुद्र के सम्मुखीन होना पड़ा। हस्ती के द्वारा वेतस कुँज जैसे विध्वस्त होता है उसी प्रकार अपनी सेना को विध्वस्त होते देखकर सुरेन्द्रदत्त युवराज सहित युद्ध में अग्रसर हुआ। सुरेन्द्रदत्त मेघरथ के साथ और युवराज दृढ़रथ के साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने परस्पर एक दूसरे का अस्त्र भंग किया और क्षेपणास्त्र से क्षेपणास्त्र को। वे युद्ध क्षेत्र में चार दिक्पाल-से प्रतिभासित हो रहे थे।

जाँघों पर ताल ठोक कर एक दूसरे को भय दिखाकर विलक्षण मल्ल की तरह उन्होंने मल्ल युद्ध किया, उस समय वे इस प्रकार संश्लिष्ट हो गए कि लगा वे कुण्डलीकृत साँप हों। मल्ल युद्ध में उनकी महाबलशाली भुजाएँ एक साथ उत्तोलित होने से वे शृंगयुक्त गजदन्त पर्वत हों ऐसा भ्रम होने लगा। अन्त में मेघरथ और दृढ़रथ ने सुरेन्द्रदत्त और युवराज को वन्य हस्ती की तरह बन्दी बना लिया। सुरेन्द्रदत्त के राज्य में स्वराज्य की तरह आज्ञा प्रवर्तित कर आनन्दित मेघरथ और दृढ़रथ ने सुमन्दिरपुर की ओर प्रस्थान किया।

निहतशत्रु ने आगे आकर कुमारों का स्वागत किया। आगत अतिथियों

का स्वागत करना तो विशेष कर्त्तव्य होता ही है फिर अतिथि भी तो वैसे ही थे। उन्होंने कुमारों का आलिंगन किया, उनका मस्तक चूमा। उस समय उन्हें अहमिन्द्र के अनुरूप सुख की अनुभूति हुई। तदुपरान्त अपनी प्रिय ज्येष्ठ कन्या प्रियमित्रा और मनोरमा के साथ मेघरथ का एवं तृतीय छोटी कन्या का दृढ़रथ के साथ शुभ मुहूर्त में विवाह कार्य सम्पन्न किया। महा आडम्बर से यथाविधि विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् दहेज सहित नितहशत्रु ने उन्हें विदा दी। वे भी अपनी नगरी की ओर प्रस्थित हो गए। राह में सुरेन्द्रदत्त और युवराज को उनका राज्य लौटाकर वे अपने नगर में प्रविष्ट हुए।

प्रेम के कारण जिस प्रकार इन्द्र और उपेन्द्र एक स्थान में अवस्थित रहते हैं उसी प्रकार दीर्घबाहु मेघरथ और दृढ़रथ अपनी-अपनी पत्नियों सहित सुख भोग करने लगे। मेघरथ की पत्नी प्रियमित्रा ने नन्दीसेन को, मनोरमा ने मेघसेन को एवं दृढरथ की पत्नी सुमति ने रत्नों में रोहण की तरह एक पुत्र रथसेन को जन्म दिया।

एक दिन जब घनरथ अन्तःपुर में यूथ परिवृत्त हस्ती की तरह स्व पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, और पौत्रादि से घिरे विनोद में समय व्यतीत कर रहे थे सुसेना नामक एक गणिका हाथ में एक मुर्गा लेकर वहाँ उपस्थित हुई और महाराज से निवेदन किया कि मेरा यह मुर्गा मुर्गों में सर्वोत्तम और मुर्गों का मुकुटमणि है। अन्य मुर्गों से यह कभी पराजित नहीं होता। यदि अन्य किसी का मुर्गा इसे पराजित कर सके तो मैं उसे एक लाख स्वर्ण मुद्रा दूँगी। यदि किसी के पास ऐसा मुर्गा है तो वह बाजी जीत ले।

यह सुनकर युवराज्ञी मनोरमा बोली, महाराज, इस शर्त पर मेरा मुर्गा सुसेना के मुर्गे के साथ लड़ाई करेगा। घनरथ की सम्मति मिल जाने पर मनोरमा ने दासी से कहकर अपना मुर्गा बज्रतुण्ड को वहाँ मंगवाया और दोनों को आमने-सामने खड़ा कर दिया। प्रदर्शनी के पदातिक सैनिक की तरह ताल पर पैर फेंककर नृत्य करते-करते उन्होंने एक दूसरे पर आक्रमण किया। कभी उड़कर, कभी गिरकर, कभी आगे बढ़कर, तो कभी पीछे हटकर वे एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। उनके मस्तक लाल तो थे ही किन्तु अब तो होंठ और पैरों के नाखूनों के खरोंच लगने से रक्त क्षरित होने से वे और लाल हो उठे। अस्त्रधारी पुरुषों की तरह उन्होंने एक दूसरे को नाखूनों से बींध डाला। हर क्षण कोई युवराज्ञी का मुर्गा जीत गया तो कोई सुसेना का मुर्गा जीत गया कहकर चीत्कार कर उठते। किन्तु वास्तव में कोई किसी को पराजित नहीं कर पा रहा था।

इस भाँति उन्हें परस्पर युद्धरत देखकर घनरथ सहसा बोल उठे—इनमें से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकेगा ।

मेघरथ ने प्रश्न किया, पिताजी, सो क्यों ? घनरथ जो कि अवधिज्ञानी थे बोले, यह इनके पूर्व जन्म के कथा से सम्बन्धित है । मैं वही कथा सुना रहा हूँ सुनो—

इस जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में रत्नपुंज-सा रत्नपुर नामक एक नगर था । वहाँ धनवसु और दत्त नामक दो वणिक रहते थे । उनमें बड़ी घनिष्ठता थी । पिपासित चातक की तरह उनमें धनाकांक्षा भी असीमित थी । इसलिए वे शकटों में, यानों में बहुविध पण्य लेकर विदेशों में जाते रहते । वे ग्राम नगर खानादि में विभिन्न स्थानों में एक साथ दरिद्र के पिता की तरह भ्रमण करते और जब उनके बैल क्षुधा से तृषा से क्लान्त, दुर्बल, आहत, क्षीण या शीत और ग्रीष्म से पीड़ित होकर अथवा अतिभार वहन करने में असमर्थ हो जाते तो वे उन्हें परमाधार्मिक देवों की तरह लाठी, सोंटा, अंकुश से आहत कर या पूँछ मोड़कर चलाते । बलदों की पीठ फूल-फूल जाती पर वे छूरी से उसे चीर डालते । नाक के छिद्र कट जाने पर अन्यत्र छेद कर देते । जाने की जल्दी में बलदों को पूरा विश्राम भी नहीं देते । यहाँ तक कि स्वयं भी चलते-चलते आहार करते । वे कम वजन देते, कम नाप करते, झूठे सिक्के देकर, पण्य की झूठी बड़ाई, कर लोगों को ठगते रहते । प्रायः किसी न किसी बात को लेकर वे आपस में झगड़ते रहते । निष्ठुर लोभी तो वे थे ही, मिथ्यात्व के वशीभूत होकर धर्म का नाम भी नहीं लेते । एक दिन राग द्वेष से प्रेरित होकर एक दूसरे से लड़ते हुए वे मर गए । आर्त्तध्यान में मृत्यु होने के कारण दूसरे जन्म में वे हस्ती रूप में जन्मे कारण आर्त्तध्यान में मृत्यु होने से पशु योनि ही प्राप्त होती है ।

इसी ऐरावत क्षेत्र के सुवर्णकुला नदी तट पर वे ताम्र कलश और कंचन कलश नामक हस्ती रूप में जन्मे । बड़े होने पर सातगुणा मदक्षरण से मतवाले होकर वे वृक्षादि छेदन-भेदन करते हुए उसी नदी तट पर स्वयूथ सहित इधर-उधर विचरते हुए एक दिन एक दूसरे को देखा । अपने प्रतिविम्ब के भ्रम में पूर्व जन्म के द्वेष के कारण दोनों के मन में क्रोध उद्दीप्त हो गया और दावाग्नि प्रज्ज्वलित पर्वत की तरह एक दूसरे की ओर दौड़े । बहुत देर तक सूँड़ों से, दाँतों से परस्पर युद्ध करते हुए दूसरे जीवन में फिर युद्ध करेंगे कहते हुए वहीं मर गए ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी में पशुपालक नन्दीमित्र रहता

था। उन्होंने उसके भैंसों के दल में भैंसा रूप में जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर उन्होंने हस्ती शिशु का आकार ग्रहण किया। राजा शत्रुंजय और देवानन्दा के पुत्र धनसेन और नन्दीसेन ने एक दिन उन दोनों सुन्दर भैंसो को देखा। कौतुहलवश उन्होंने उन्हें परस्पर लड़ने को नियुक्त किया।

बहुत देर तक लड़ने के पश्चात वे मर गए और काल-महाकाल नामक भेड़ों के रूप में उत्पन्न हुए। एक दिन एक दूसरे को देखकर पूर्व जन्म के वैर के कारण परस्पर लड़ना प्रारम्भ किया और लड़ते-लड़ते मरकर इस जन्म में शक्तिशाली मुर्गों के रूप में जन्में हैं। इसके पूर्व भी वे एक दूसरे को हरा नहीं सके थे और आज भी कोई किसी को नहीं हरा सकेगा।

घनरथ की बात समाप्त होने पर मेघरथ बोले, ये केवल पूर्व जन्म के बैर के कारण ही नहीं लड़ते, इनमें विद्याधर प्रविष्ट होकर इन्हें लड़ा रहा है। यह सुनकर घनरथ ने भौंहें चढ़ाकर मेघरथ की ओर देखा। करबद्ध होकर विनीत भाव से तब मेघरथ ने कहना प्रारम्भ किया—

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में बैताढ्य नामक पर्वत की उत्तर श्रेणी पर स्वर्णनाभ नामक एक नगरी थी। गरूड़-से शक्तिशाली एक गरूड़वेग नामक राजा वहाँ राज्य करते थे। उनके चारित्रसम्पन्ना पत्नी का नाम था धृतिसेना। उसने चन्द्रतिलक और सूर्यतिलक नामक दो राजपुत्रों को जन्म दिया। उनके जन्म के पूर्व उसने अपनी गोद में चन्द्र-सूर्य को देखा था। इसीलिए उनका यह नाम रखा गया। बड़े होने पर वे एक दिन मेरुपर्वत पर गए। वहाँ शिखर स्थित शाश्वत अर्हतों की वन्दना की। तदुपरान्त इधर-उधर भ्रमण करते हुए उन्होंने नन्दन वन की स्वर्ण शिला पर खड़े चारण मुनि सागर-चन्द्र को देखा। मुनि को वन्दना-नमस्कार कर और प्रदक्षिणा देकर युक्तकर होकर उनकी देशना सुनी।

देशना शेष होने पर वे पुनः मुनि को वन्दना कर बोले, सौभाग्यवश ही आज अज्ञान-अन्धकार को दूर करने में मशाल-से आपको देखा है। भगवन्, आप हमारे पूर्व जन्म बताएँ। सूर्योदय की भाँति आप जैसे व्यक्तियों का ज्ञान अन्य के कल्याण के लिए ही होता है।

मुनि ने कहना आरम्भ किया—घातकी खण्ड के पूर्व ऐरावत क्षेत्र में वज्रपुर नामक एक नगर था। वहाँ आर्त्तजनों को अभय प्रदान करने वाले अभय घोष नामक एक राजा थे। उनकी पत्नी का नाम था सुवर्णतिलका।

विजय और वैजयन्त नामक उनके दो पुत्र थे। क्रमशः शिक्षा प्राप्त करते हुए वे यौवन को प्राप्त हुए।

उसी समय उसी क्षेत्र में स्वर्णद्रुम नामक नगर में शंख-से शुभ्र गुण युक्त शंख नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न पृथ्वीसेना नामक एक कन्या थी। उस कन्या के जन्म के पूर्व रानी पृथ्वी ने स्वप्न में अपनी गोद में एक पुष्पदाम देखा था। पुष्पदाम-सी कोमल पृथ्वीसेना क्रमशः समस्त कलाएँ हस्तगत कर यौवन को प्राप्त हुयी। कला शिक्षा से संस्कारित होकर उसके रूप और गुण में और वृद्धि हो गयी। अभय घोष को राजा शंख ने उसके उपयुक्त वर समझ कर उनसे उसका विवाह कर दिया। रमासह रमापति की तरह अभय घोष पृथ्वीसेना के साथ यौवन सुख भोग करने लगे।

एक दिन बसन्त ऋतु में दासी बसन्तिका पुष्प सम्भार लिए राजा अभय घोष के निकट आयी। रानी सुवर्णतिलका उस पुष्प संभार को देखकर राजा से बोली—षड्‌ऋतु के उद्यान में वसन्त का आविर्भाव हुआ है। देव, हम अन्तःपुरिकाओं सहित इस उद्‌यान में चलें और बसन्त लक्ष्मी का आलिंगन करें। ठीक उसी समय पृथ्वीसेना वहाँ आयी और बहुमूल्य पुष्पगुच्छ इन्हें पकड़ाया। राजा पुष्पगुच्छ को अपने हाथों में लेकर अवाक् से उसे देखते रहे। तदुपरान्त अन्तःपुरिकाओं को लेकर उसी उद्‌यान में गए।

पति की आज्ञा प्राप्तकर पृथ्वीसेना ने इधर-उधर घूमते हुए एक वृक्षतले ज्ञानी मुनि दन्तमंथन को देखा। भक्ति भरे चित्त से आनन्दित होकर उसने मुनि को वन्दना की और उनकी देशना सुनी। उस देशना को सुनकर उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ। संसार-भय से भीत पृथ्वीसेना उसी मुहूर्त्त में राजा से आदेश लेकर दन्तमंथन मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। राजा अभय घोष पृथ्वीसेना के चारित्र की प्रशंसा कर राज प्रासाद में लौट आए।

एक दिन अभय घोष जब प्रासाद की छतपर विश्रामरत सूर्य की तरह अपने रत्न-सिंहासन पर बैठे थे तब अनन्तमुनि (भावी तीर्थंकर) को छद्मस्थावस्था में प्रासाद में प्रवेश करते देखा। वह शीघ्रतापूर्वक आहार लेकर उनके सम्मुख आये और वन्दना की। अनन्त मुनि ने भिक्षा ग्रहण कर उपवास का पारना किया। देवों ने रत्न वर्षादि पाँच दिव्य प्रकट किए। पारने के पश्चात् अनन्त मुनि अन्यत्र विहार कर गए। कारण तीर्थंकर भी छद्मस्थावस्था में साधारण साधु की तरह एक स्थान पर अवस्थित नहीं रहते।

कालान्तर में केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर अनन्त विचरण करते हुए एक दिन वज्रपुरी में पहुँचे। अभय घोष उनके आगमन का संवाद प्राप्त कर उन्हें वन्दना करने गए और तीन बार प्रदक्षिणा देकर उनकी स्तुति की एवं भवनाशकारी उनकी देशना सुनी। देशना शेष होने पर अभयघोष उन्हें वन्दन कर बोले—भगवन्, मेरे भाग्योदय से कल्पवृक्ष-से आप यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपका आगमन अन्य के कल्याण के लिए ही होता है। हे दयानिधि, हे जगत्पूज्य, आप तब तक यहाँ अवस्थान करें जब तक मैं राज्यभार पुत्र को देकर आपके चरण-कमलों में दीक्षा लेने के लिए नहीं लौटूँ।

शुभ कार्य में विलम्ब मत करो यह जिनादेश प्राप्त कर अभय घोष प्रासाद में लौटे और पुत्र विजय एवं वैजयन्त को बुलाकर बोले, विजय, तुम ज्येष्ठ पुत्र के रूप में इस राज्यभार को ग्रहण करो और वैजयन्त तुम युवराज बनो। मैं तीर्थंकर भगवान से दीक्षा ग्रहण करूँगा ताकि मुझे इस संसार-चक्र में पुनः आवर्तित नहीं होना पड़े। यह सुनकर वे बोले, आप जैसे संसार से भयभीत हैं हम भी उसी प्रकार संसार भय से भीत हैं। हम आपके ही पुत्र हैं। अतः हम भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करेंगे। दीक्षा ग्रहण के दो परिणाम होंगे—आपकी सेवा और संसार से मुक्ति।

तब ऐसा ही हो कहकर उन महामना ने अपना वृहद् राज्य अन्य योग्य व्यक्ति को प्रदान कर दोनों पुत्रों सहित तीर्थंकर अनन्त से चतुर्विध संघ के सम्मुख दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् उन तीनों ने घोर तपस्या की। राजा ने बीस स्थानक की उपासना द्वारा तीर्थंकर गोत्र कर्म का उपार्जन किया। तीनों ही मृत्यु के उपरान्त अच्युत देवलोक में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुष्य लेकर उत्पन्न हुए।

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह के अलंकार स्वरूप पुष्कलावती विजय में पुण्डरिकिनी नामक एक नगरी है। वहाँ के राजा का नाम हेमांगद और रानी का नाम वज्रमालिनी था। अभयघोष का जीव च्युत होकर उसके गर्भ में आया। जातक तीर्थंकर होगा यह चौदह स्वप्नों से सूचित हुआ। समय पूर्ण होने पर वज्रमालिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रों ने उनका स्नानाभिषेक सम्पादित किया। वे अभी घनरथ रूप में पृथ्वी पर शासन कर रहे हैं। दोनों राजकुमार विजय और वैजयन्त अच्युत देवलोक से च्युत होकर सूर्यतिलक और चन्द्रतिलक नामक विद्याधर बने। वे दोनों विद्याधर अपना पूर्व जन्म ज्ञात हो जाने से अपने पूर्व जन्म के पिता आपको देखने के लिए

यहाँ आए हैं। वे ही कौतुक वश इन दोनों मुर्गों के मध्य प्रवेश कर इनको परस्पर लड़ने को उत्तेजित कर रहे हैं। ये यहाँ से मुनि भोगवर्द्धन के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करेंगे और कर्मक्षय कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

यह सुनकर दोनों विद्याधर कुमार प्रकट हुए और पूर्व की तरह ही स्वयं को उनका पुत्र समझ कर घनरथ को प्रणाम कर स्वगृह लौट गए।

जब उन मुर्गों ने यह बात सुनी तो वे मन ही मन सोचने लगे, हाय, यह संसार कितना भय और क्लेश से पूर्ण है। हमने जीवन में वणिक रूप से ऐसा कुछ उपार्जन नहीं किया जिससे और तो क्या पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त न कर सके ? क्योंकि मनुष्य जन्म लाभ ऐसे ही दुष्कर है। उस मनुष्य जीवन को तो हमने आखेटी की तरह लोभी और निष्ठुर बनके दूसरे को ठगकर व्यर्थ ही नष्ट किया। कम नाप व कम तौल से केवल अन्य को ही नहीं ठगा, स्वयं भी परस्पर झगड़ा किया है और आर्त्त ध्यान में मरकर पशुयोनियाँ प्राप्त की है। धिक्कार है हमको !

ऐसा सोचकर उन्होंने मेघरथ को प्रणाम कर उनसे कहा, देव, अब हमें बताएँ, हम अपना उद्धार कैसे करेंगे ?

अवधिज्ञान से उनका भविष्य जानकर मेघरथ उन्हें बोला, अर्हत् देव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिन प्ररूपित दयामय धर्म की शरण ग्रहण करो। उसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

यह सुनकर मुर्गों ने वहीं संवेग को प्राप्त कर अनशन में मृत्यु प्राप्त की। मृत्यु के पश्चात् वे भूतरत्ना अरण्य में ताम्रचूल और सुवर्णचूल नामक दो महर्द्धिक भूत-नायक के रूप में उत्पन्न हुए। अवधिज्ञान से अपना पूर्व भव ज्ञात हो जाने से विमान में बैठकर वे अपने पूर्व जन्म के उपकारी युवराज मेघरथ के पास गए। वे मेघरथ को प्रणाम कर बोले—

आपकी कृपा से हम व्यंतर योनि में उत्पन्न हुए हैं। हम अपने कर्मानुसार पूर्व जन्मों में मनुष्य, हस्ती, महिष, मेष और अन्त में मुर्गे के रूप में पूर्ण आयुष्य लेकर जन्मे थे। मुर्गे के जन्म में न जाने हमने कितने कीटों का भक्षण किया। हमारी तो न जाने क्या दुर्गति होती यदि आप हमारी रक्षा नहीं करते ? हे देव, हम पर दया कर अनुग्रह करें। इस विमान पर चढ़कर समस्त पृथ्वी को देखें। यद्यपि अवधिज्ञान से आप तो सभी कुछ देख सकते हैं। फिर भी हमें आपकी सेवा का अवसर दें।

इस भाँति आग्रह करने पर सज्जनता में क्षीर-समुद्र-से मेघरथ परिवार सहित उस विमान पर चढ़े। वह विमान आकाश में उड़ा और इच्छानुसार गति से चलने लगा। जो कुछ भी द्रष्टव्य था उसे वे अंगुली निर्देश कर मेघरथ को दिखलाने लगे—

वह देखिए, यह मेरु पर्वत चालीस योजन ऊँचा और वैदूर्यमणि से निर्मित है। इसके किरण-जाल में ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो आकाश में दूर्वा अंकुरित हो गयी है। रत्न-सिंहासन सहित चारों ओर से रक्षित वह अर्द्धचन्द्राकृति शिला है। ये शिलाएँ अर्हतों के स्नानाभिषेक के जल से पवित्र है। ये शाश्वत जिनेश्वरों के मन्दिर हैं और यह पाण्डुक वन है। इसके पुष्प अर्हतों की पूजा में निवेदित होकर जीवन की सार्थकता प्राप्त करते हैं। ये छः वर्षधर पर्वत हैं जिससे चौदह महानदियाँ प्रवाहित होती हैं। ये छः सरोवर हैं। यह देखिए, यह वैताढ्य पर्वत है जिसकी दोनों श्रेणियों पर विद्याधर निवास करते हैं और जो भरत क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करता है। वैताढ्य पर्वत के शिखर पर स्थित वे शाश्वत जिन मन्दिर हैं। यह जम्बूद्वीप को वेष्टन करती वातायन सहित चक्राकार प्राचीर है। यहाँ विद्याधर क्रीड़ा करने आते हैं।

वह देखिए, लवण समुद्र जिसमें बहुत प्रकार के जल-जन्तु रहते हैं। कालोद परिवेष्टित वह घातकी खण्ड द्वीप है। ये दोनों मेरु पर्वत हैं जिनकी शिलाओं पर अर्हतों का जन्माभिषेक होता है। ये दोनों ईष्वाकार पर्वत हैं जिन पर शाश्वत जिन मन्दिर है। वह देखिए पुष्करार्द्ध द्वीप जो देखने में घातकी खण्ड जैसा है। यह मानुषोत्तर पर्वत है। मनुष्य यहीं तक आ सकते हैं। इसके आगे का स्थान मनुष्यों के लिए अगम्य है।

इस प्रकार मानषोत्तर पर्वत तक समस्त स्थानों को दिखाकर वे पुण्डरिकिनी नगरी को लौट आए। मेघरथ को प्रासाद में उतारकर और उन्हें प्रणाम कर वहाँ उन्होंने रत्नों की वर्षा की फिर अपने निवास को चले गए।

कालान्तर में लौकान्तिक देवों ने आकर महाराज घनरथ से कहा—स्वामी, धर्म तीर्थ की प्रवर्तना करें। घनरथ बोधित तो थे ही अतः उनकी बात सुनकर एक वर्ष तक वर्षीदान देकर मेघरथ को राजा बनाकर और दृढ़रथ को युवराज रूप में नियुक्त कर उन्होंने प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। केवल-ज्ञान उत्पन्न होने पर भव्य जीवों को उपदेश देते हुए वे पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

जिनका पादपीठ अजस्र राजाओं की मुकुटों द्वारा घर्षित होता है ऐसे मेघरथ दृढ़रथ सहित राज्य संचालन करने लगे। एक दिन प्रजा के अनुरोध पर विनोद के लिए वे देव रमण नामक उद्यान में आए। वहाँ जब वे अपनी रानी प्रियमित्रा सहित एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर संगीत सुन रहे थे उसी समय हजारों भूत वहाँ उपस्थित हो गए और उन्हें अभूतपूर्व संगीतानुष्ठान दिखाने की इच्छा प्रकट की। उनमें किसी का पेट लम्बोदर की भाँति था तो किसी की देह इतनी कृश थी कि लगता था मानो रसातल को पकड़े रहने के लिए ही वे सृष्ट हुए हों। किसी का पैर इतना लम्बा था कि लगता था मानो वे ताल वृक्ष पर चढ़े हुए हों। कोई अपनी दीर्घ बाहुओं के कारण सर्प-वेष्टित वृक्ष-से लग रहे थे। किसी ने सर्पों के अलंकार धारण कर रखे थे तो किसी ने नेवलों के। किसी की देह पर चीते की छाल थी तो किसी के बाघ की। किसी ने देह पर भष्म रमा रखी थी तो किसी ने गन्ध द्रव्यों को। किसी के गले में उल्लुओं की माला लटक रही थी तो किसी के शकुनि की। किसी के गले में छुछुन्दरों की माला थी तो किसी के गले में छिपकलियों की तो किसी के गले में हड्डियों की। कोई अट्टहास कर रहा था तो कोई चीत्कार। कोई घोड़े की तरह हिनहिना रहा था तो कोई मेघ की तरह गरज रहा था। कोई भुजाओं को पीट रहा था तो कोई ताली बजा रहा था। कोई मुख से वाद्य-ध्वनि निकाल रहा था तो कोई काँख से। धरती को जो विदीर्ण कर दे और आकाश को फाड़ डाले ऐसे अभूतपूर्व पद-विन्यास और देह संचालन कर वे ताण्डव नृत्य दिखाने लगे।

राजा के विनोद के लिए जब वे इस प्रकार नृत्य दिखा रहे थे तभी आकाश से एक दिव्य विमान प्रकट हुआ। उस विमान में रति और कामदेव-सा सुन्दर एक पुरुष और एक स्त्री थी। उन्हें देखकर रानी प्रियमित्रा ने राजा से पूछा—देव, वे कौन हैं? क्यों और कहाँ से वे यहाँ आए हैं?

[क्रमशः

संकलन

|| शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष ||

आज हमारे देश में शिक्षा का विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। प्रति वर्ष लाखों लोग शिक्षित होते हैं और विभिन्न विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं, पर शिक्षा के परिणामस्वरूप समाज का जैसा निर्माण होना चाहिए, नहीं होता। सामाजिक कुरीतियाँ, ऊँच-नीच का भेदभाव, साम्प्रदायिक विद्वेष, हिंसा, भय, आतंक, तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति मिट जानी चाहिये। सबको योग्यता और आवश्यकता के अनुसार रोजगार मिलना चाहिये, पर वैसा समाज और राष्ट्र में दिखाई नहीं देता। इसका कारण यही है कि सिद्धान्त के तौर पर ऊँचे-ऊँचे आदर्श पुस्तकों में तो हम पढ़ लेते हैं और पढ़ा लेते हैं, पर व्यवहार में उन्हें उतार नहीं पाते। सिद्धान्त और व्यवहार की इस खाई के कारण ही हमारा व्यक्तित्व बँट गया है। कथनी और करनी में अन्तर दिखाई देता है। जब तक ज्ञान व्यवहार में नहीं उतरता, प्रयोग में नहीं आता, तब तक वह चरित्र का अंग नहीं बन पाता।

आज हमारे देश में सबसे बड़ा संकट चरित्र का संकट है। हर व्यक्ति का यह प्रयत्न रहता है कि पहले वह अपना घर भरे। प्राचीन समय में सिद्धान्त के तौर पर लोगों का ज्ञान भले ही कम था पर व्यवहार में वे बड़े कुशल होते थे। वे उच्च शिक्षित न होकर भी बहुश्रुत होते थे। परिवार में स्नेह सम्पर्क का वातावरण होता था। पड़ोस में एक-दूसरे के सुख-दुःख में लोग हाथ बंटाते थे। हमारे पर्व-त्योहार, अनुष्ठान आदि सबमें सबकी भागीदारी होती थी। लगता था सारा गाँव ही एक परिवार है। पर अब ऐसा देखने में कम आता है। इसका कारण है कि शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष कमजोर हो गया है।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

श्रमणोपासक, १० जुलाई १९९०

|| राजर्षि विश्वामित्र और काम विजेता स्थूलिभद्र ||

…रात में विश्वामित्र सो नहीं पाते। करवटें बदलने पर भी नींद निगोड़ी आ नहीं रही। नदी में स्नान करती हुई मेनका के अंग-प्रत्यंग, उसकी विहँसती छवि, मधुर मुस्कान, थिरकती हुई चाल, भीगी हुई कामुक

पुष्ट देह, क्या हो गया है ऋषि को? सारी साधना, सारा का सारा ध्यान, घोर तपस्या, ब्रह्मर्षि बनने की प्रबल प्रतिज्ञा, वह अनुत्तर लक्ष्य, सभी विस्मृत और नाम शेष हो गये-से दीखते हैं। ऋषि मन को ठिकाने लाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। पर व्यर्थ। फिर-फिर मेनका की मादक देह निमन्त्रण देती है। फूलों भरे मार्ग पर थिरकती हुई पुकारती-सी मेनका आँख मिचते ही दृष्टिगोचर होती है। कुछ सूझ नहीं रहा। ऋषि तड़पते हैं। इस तड़पन में कितना सुख है? कितना सुहा रहा है यह दृश्य। दिल में मधुर-मधुर दर्द उभर रहा है। लाख प्रयत्न करने पर भी ऋषि सो नहीं पा रहे हैं।

…और काम जीत गया। मेनका पत्थर नहीं बनी, विश्वामित्र को मोम बना दिया। कामाग्नि से मोम पिघल गया।…

जैसे वैदिक साहित्य में विश्वामित्र का जुझारू चरित्र प्रसिद्ध है वैसे ही जैन इतिहास में स्थूलिभद्र का नाम भगवान महावीर और गुरु गौतम के साथ अत्यन्त श्रद्धा से याद किया जाता है।

किशोरावस्था में ही राजनर्त्तकी कोशा के आकर्षण में बंधकर बारह वर्ष तक स्थूलिभद्र कोशा के महल में स्थायी रूप से रहते हैं। पुत्र प्रेम में वशीभूत महामंत्री शाकडाल मनचाहा धन कोशा वेश्या को भेजते हैं।…

बारह वर्ष जैसे क्षणमात्र में व्यतीत हो जाते हैं।

…स्थूलिभद्र अब एक निःस्पृह मुनि हैं। कोशा के द्वार पर आते हैं। चित्रशाला में निवास हेतु याचना करते हैं। फिर—

…राग और विराग का, काम और संन्यास का, बन्धन और मुक्ति का महासंग्राम छिड़ जाता है। अस्त-व्यस्त वस्त्रों में कोशा की परिचित देह झाँक-झाँक कर भद्र को मौन निमन्त्रण देती है। …क्या भद्र काष्ठ या स्वर्ण की या स्फटिक प्रस्तर की प्रतिमा बन गए है?

…विवश कोशा हार गई।

विश्वामित्र और स्थूलिभद्र! वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति रूपी दो छोर हैं।

—पुखराज भंडारी

शाश्वत धर्म ॥ मई १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

कथालोक || जुलाई १९९०

इस अंक में है जैन कथा 'पक्षपात' (मुनि कन्हैयालाल), 'काना कठियारा' (नैनमल सुराना 'खुशदिल'), 'सेवाभावी मुनि नन्दीसेन' (देवेन्द्र कुमार हिरण), 'धर्म जिज्ञासु शकडाल पुत्र' (मुनि विनय कुमार 'आलोक')।

जैन सिद्धान्त भास्कर || जून १९८९

इस अंक में है 'जैन दर्शन में अनुशासन परक शिक्षा' (डॉ० रामकिशोर राय), 'संस्कृत भाषा की कतिपय अन्तस्थ एवं स्वर ध्वनियां' (डॉ० गजेन्द्र कुमार जैन, प्रो० एम० एस० शास्त्री), 'अपभ्रंश के महापुराण में स्वप्न दर्शन' (डॉ० आदित्य प्रचंडिया 'दीति'), 'द-द-दा' (कन्हैयालाल सरावगी), 'जैन दर्शन में चिन्तन और मनन का महत्व' (कमला जोशी), 'Philosophy and Religion of Mahavira' (श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामीजी), 'Vegetarianism' (S.C. Diwakar), 'Farmans of Emperor Akbar and Ahmad Shah' (S. K. Jain).

तीर्थंकर || जून १९९०

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है '१०८ का माहात्म्य' (अभय प्रकाश जैन), 'चलें मन के पार' (मुनि चन्द्रप्रभ सागर), 'प्रार्थना : एक ऊर्जा' (कन्हैयालाल सरावगी), 'सामाजिक इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता, स्रोत और समस्याएँ' (डॉ० नेमीचन्द जैन), 'जैन धर्म और चिकित्सा विज्ञान' (डॉ० ताराचंद गंगवाल), 'साधु संस्था : कुछ सुझाव' (नरेन्द्र प्रकाश जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XIV No. 4 **TITTHAYARA** **August 1990**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73